लोक व जनजातीय कलाओं में ज्यामितीय प्रतीकों का स्वरूप

शेरिल गुप्ता
शोधार्थी
चित्रकला विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर
ईमेल : sherilgupta03@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

शेरिल गुप्ता

लोक व जनजातीय कलाओं में ज्यामितीय प्रतीकों का स्वरूप

Artistic Narration 2023,
Vol. XIV, No. 2,
Article No. 22 pp. 154-162

Online available at:
https://anubooks.com/journal/artistic-narration

सारांश

लोक व जनजातीय कलाएँ प्राचीन काल से ही परम्परागत विश्वासों, रहस्यात्मक संकेतों और अतीत के संस्कारों पर आधारित होती है। किसी भी देश की संस्कृति उसकी अपनी आत्मा होती है जिसका स्वरूप इन कलाओं में देखने को मिलता है। कलाकारों ने लोक व जनजातीय कलाओं में धरती के प्रति अपनी पवित्र निष्ठा को अपने हृदय की अजस्त्र रस–धारा द्वारा अभिसंचित करके कुछ ऐसी सहज व सुन्दर ज्यामितीय कलाकृतियों का निर्माण किया है जो सम्पूर्ण राष्ट्र की चेतना को आह्लादित करती है। रचनात्मक दृष्टि से इन कलाओं में प्रतीकात्मक शैली के साथ ही अमूर्त ज्यामितीय रूपांकन किया जाता है। यह कलाएँ बाह्य सौन्दर्य के साथ–साथ आन्तरिक सौन्दर्य से भी परिपूर्ण है तथा इनमें गतिमान रहने वाली ऐसी परम्परा है जो पीढ़ी दर पीढ़ी मत–मान्यताओं और रीति–रिवाजों सहित प्रगतिशील है।

मुख्य बिन्दु

लोककला, जनजातीय कला, ज्यामितीय, प्रतीकों, संस्कृति।

प्रस्तावना

कला मानव की सौन्दर्य भावना का परिचायक होती है और यह मानव संस्कृति की प्रस्तुति हैं। भारत एक प्राचीन देश है तथा यहाँ कला एवं संस्कृति में लोक और जनजातीय कलाओं का सम्बन्ध परिलक्षित होता है जैसे–राजस्थान की माँडणा, महाराष्ट्र की वर्ली, उत्तर प्रदेश में चौक पूरना, बंगाल में अल्पना, ओडिशा की सौरा, उत्तराखण्ड में ऐपण, मध्य प्रदेश में गोंड तथा बिहार में मधुबनी आदि होती हैं। इन सभी कलाओं को निर्मित करने में ज्यामितीय आकारों का विशेष महत्त्व है। यह ज्यामितीय आकार प्रतीक स्वरूप विशिष्ट अर्थ लिए होते हैं जिसकी अभिव्यक्ति इन कलाओं द्वारा की जाती है। लोक व जनजातीय कलाओं के उद्भव एवं विकास की कहानी बहुत प्राचीन हैं तथा इसकी उत्पत्ति प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान में आधुनिक काल के विभिन्न रूपों में दिखायी देती है। परम्परागत व लोक रुचियों को जीवित रखने के लिए भारत के विभिन्न प्रदेशों में लोक व जनजातीय कलाओं ने जो कार्य किया है विज्ञान और दर्शन की दृष्टि से उसकी तुलना नही की जा सकती है। इस प्रकार इन कलाओं का आधार सामाजिक व धार्मिक समुदाय आदि से सम्बन्धित है तथा भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का सजीव व साक्षात रूप इन कलाओं में दृष्टिगत होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस शोध पत्र का उद्देश्य प्रमुख लोक एवं जनजातीय कलाओं में चित्रित ज्यामितीय प्रतीकों का अध्ययन कर उनकी उपयोगिता, प्रासंगिकता तथा सृजन शैली के बारे में अवगत करना है।

लोक व जनजातीय कलाओं में अंतर

लोक कला का अर्थ लोकमन अथवा जनजीवन की सहज अभिव्यक्ति से है। लोक कला जो गाँवों, कस्बों, शहरों में प्रचलित है यह सभी वर्ग, जाति के लोगों द्वारा सामाजिक व धार्मिक उत्सवों तथा मांगलिक कार्यों में की जाती है इसमें जाति, समाज, सवर्ण का कोई भेद नही है इसलिए लोककला में सौंदर्य और मंगल दोनों ही भावना निहित होती हैं यदि इसमें मंगल की भावना न हो तो इसका कोई महत्त्व नही है क्योंकि मांगलिक भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए ही यह कला विभिन्न अवसरों पर की जाती है।

जनजातीय कला विशेष रूप से जनजातीय समुदाय द्वारा निर्मित कला है तथा उसका नाम उस विशेष समुदाय के नाम पर रखा जाता है जिससे वह सम्बन्धित होती है उदाहरण जैसे– गोंड, वर्ली, सौरा, संथाल, भील कला आदि। जनजातीय कला ईश्वरीय और दैवीय शक्ति में उत्सुकता व रुचि रखते हैं तथा इस कला को नवृंशविज्ञान के रूप में भी जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि लोक कलाएँ विभिन्न आदिवासी क्षेत्रों में पाई जाने वाली जनजातीय कलाओं का विकसित रूप है लोक व जनजातीय कलाएँ एक दूसरे के पूरक के रूप में जानी जाती है लेकिन फिर भी, इन कलाओ में कुछ सीमा तक समानता होते हुए भी भिन्नता है।

लोक व जनजातीय कलाओं का ज्यामितीय रूप

भारत एक प्राचीन सांस्कृतिक देश है इसलिए यहाँ कि कला एवं संस्कृति में इन कलाओं का अनूठा समन्वय परिलक्षित होता है। यह कलाएँ किसी भी क्षेत्र या स्थानीय परम्पराओं का दर्पण होती है जिनमें ज्यामितीय प्रतीकों की अभिव्यक्ति होती है। लोक व जनजातीय कलाओं में ज्यामितीय प्रतीकों के साथ–साथ पारम्परिक सौन्दर्य भी समाहित होता है तथा इन आकृतियों में सौन्दर्य बोध के अलावा विषयगत महत्त्व भी है। इस प्रकार इन कलाओं

में रंग और रेखाओं की भाषा में मन का व्यक्तित्व भी होता है इसमें रंग का सम्बन्ध प्रकृति से और रेखाओं का सम्बन्ध संस्कृति से होता है इसलिए इन आकृतियों में प्रकृति और संस्कृति का समन्वय परिलक्षित होता है।

प्रागैतिहासिक काल का अवलोकन करने से यह विदित होता है कि लोक व जनजातीय कलाओं का जन्म मानव में सजृनात्मक कला प्रवृत्ति के विकास से हुआ था जैसे– मनुष्य की रुचियाँ परिष्कृत हुई तथा उसकी सौन्दर्य दृष्टि में भी निखार आया, उसने अपने आस–पास की चीजों को साज संवार कर रखना प्रारम्भ कर दिया। जब मानव गुफाओं में निवास करता था तब भी उसने आड़ी तिरछी ज्यामितीय रेखाओं से अपनी कला की अभिव्यक्ति दी थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा (2500 ईसा पूर्व) की खुदाई में प्राप्त बत्तनों एवं मृद्रपात्रों पर अंकित अर्द्धवृत्त कोण, ज्यामितीय रेखाएँ, फूलों, पशु, पक्षी के चित्र भी कला की प्राचीनता को दर्शाते हैं। इन लोक व जनजातीय कलाओं में प्रयुक्त मुख्य ज्यामितीय सरलीकृत आकृतियाँ जैसे लाइन, वर्ग, वृत्त, त्रिभुज, आयात, चतुर्भुज, पंचकोण, षटकोण, स्वास्तिक आदि हैं। इन प्रत्येक आकारों मे अनेक रहस्य, तांत्रिक व मांगलिक उद्देश्य, धर्म, परम्परा व संस्कृति आदि का समन्वय दिखायी देता है। एक वृत्त केवल एक गोला ही नहीं इसमें चाँद, सूरज, पृथ्वी, ब्रह्माण्ड आदि कई अर्थ हो सकते हैं, इस प्रकार वर्ग के चार खण्डों में तथा स्वास्तिक की चार भुजाओं में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि समाहित हैं तथा षटकोण जो दो त्रिभुजों का युग्म होता है इसका सम्बन्ध सम्पन्नता की देवी लक्ष्मी से होता है और चक्र प्रगति, समय, अखण्डता का प्रतीक है।

स्टार

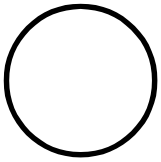

वृत्त

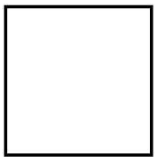

वर्ग

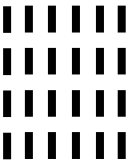

लाईन

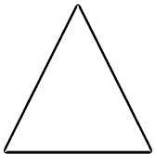

त्रिभुज

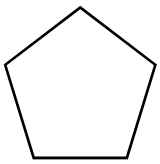

पंचकोण

षटकोण

स्वास्तिक

चक्र

अष्टदल कमल

उपरोक्त प्रतीकों के अतिरिक्त भी इन लोक एवं जनजाति कलाओं में अनेक ज्यामितीय आकारों का उपयोग किया जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों में इन कलाओं का ज्यामितीय स्वरूप जैसे–

1. वर्ली कला

वर्ली कला (महाराष्ट्र)

'वर्ली' महाराष्ट्र की एक जनजातीय कला है। वर्ली चित्रकला विशेष अवसरों पर घर को कलात्मक रूप से सजाने के लिए बनाई जाती है। प्राचीन समय में इस कला का निर्माण गुफाओं तथा मिट्टी की झोपड़ी आदि पर होता था। वर्ली जनजातीय कला को निर्मित करने के लिए स्त्रियाँ लाल गेरु रंग की पृष्ठभूमि बनाती थी और उन पर पिसे हुए चावल के पानी द्वारा सफेद ज्यामितीय आकृतियों का रेखाकंन करती थी। वर्तमान में इस कला में अनेक नए परिवर्तन हुए हैं जैसे कागज, कैनवास और एक्रेलिक रंगों का भी प्रयोग किया हैं इसके अलावा इस कला का उपयोग घर की वस्तुओं को सजाने तथा व्यापार के लिए भी किया जाता है जैसे मिट्टी के बर्तन, परिधान आदि। वर्ली कला में महिलाओं, पुरुषों द्वारा की जाने वाली इस चित्रकारी में वृत्त, चक्र, त्रिकोण एवं वर्ग आदि के ज्यामितीय प्रयोगों से भावों का चित्रात्मक अंकन किया जाता है जिससे इन चित्रों की अपनी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है इसकी हर आकृति का कोई न कोई अर्थ होता है जैसे इन चित्रों में बिन्दु सृजन का प्रतीक और सृष्टि का केन्द्र भी है तथा तीन बिन्दुओं से त्रिकोण का निर्माण होता है इन तीनों बिन्दुओं से ब्रह्मा, विष्णु, महेश को व्यक्त किया जाता हैं। वर्ली जनजातीय कला में विशेष रूप से मानव आकृतियाँ त्रिकोणीय रूप में अंकित की जाती है जिसमें दो विपरीत त्रिकोण से मानव के शरीर का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार ये कलाएँ परम्परा और आधुनिकता के संगम स्वरूप कला इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं।

2. सौरा कला

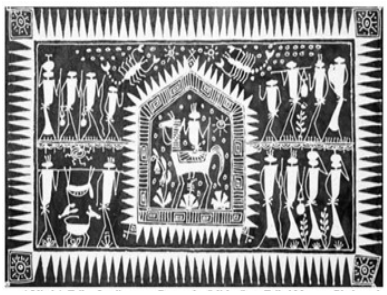

सौरा कला (ओडिशा)

'सौरा' ओडिशा की प्रसिद्ध जनजाति कला है। इस कला को पारम्पारिक ज्ञान और लोक कथाओं का खजाना माना जाता है। सौरा कला मात्र एक कला ही नही अपितु यह सौरा जनजाति के लोगों की सांस्कृतिक प्रथाओं, इतिहास एवं धार्मिक मान्यताओं का प्रतिबिम्ब भी है। इस कला की मानव आकृतियाँ महाराष्ट्र की वर्ली जनजाति कला के समान है क्योंकि इन दोनों ही कलाओं में लगभग एक समान ज्यामितीय आकारों का प्रयोग किया गया है लेकिन फिर भी इन दोनों के मध्य सूक्ष्म अन्तर है जैसे इन चित्रों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि सौरा कला की मानव आकृतियाँ वर्ली कला की तुलना में कम कोणीय हैं। इस कला के चित्रों में दैनिक जीवन के विषयों को विशेष स्थान दिया गया है जिसमें मनुष्य, घोड़ा, हाथी, सूर्य, चन्द्रमा, बैलगाड़ी आदि भी है। सौरा जनजाति के लोग अधिकतर देवी देवताओं और पूर्वजों को प्रसन्न करने के लिए चित्रण कार्य करते हैं तथा इनकी मुख्य विशेषता ज्यामितीय प्रतीकों में है जिसमें महिला पुरुषों की आकृतियाँ त्रिकोणीय रूप में बनाई जाती है। इन चित्रों को बहुत ही जीवंत व सौन्दर्यपूर्ण रूप से उकेरा गया है। सौरा जनजाति कला में घरों की मिट्टी की

दीवारों पर यह लोग प्राकृतिक रंगों द्वारा अलंकरण करते हैं जैसे चावल, सफेद पत्थर का चूर्ण, फूल, पत्ती का अर्क आदि तथा इन चित्रों को बनाने के लिए बाँस की तूलिका का प्रयोग किया जाता है।

3. ऐपण कला

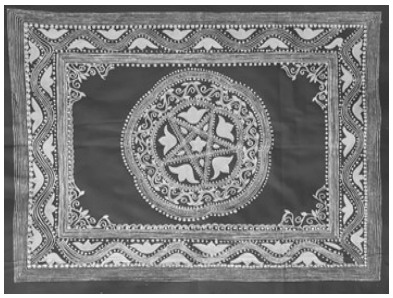

ऐपण कला (उत्तराखंड, कुमाऊँ)

'ऐपण' एक अनुष्ठानिक लोककला है जो उत्तराखंड के कुमाऊँ क्षेत्र से सम्बन्धित है। यह शुभ अवसरों, त्योहारों और अनुष्ठानों में विशेष रूप से निर्मित की जाती है। प्राचीन समय में यह लोककला घरों में भूमि और दीवारों पर की जाती थी लेकिन वर्तमान में इसका उपयोग दैनिक वस्तुओं को सजाने में व्यावसायिक रूप में भी किया जाता है। ऐपण एक ऐसी लोककला है जिसे चिकनी सतह पर बनाया जाता है इसमें गीली गेरू मिट्टी और चावलों का सफेद पेस्ट बनाकर चित्रकारी की जाती है। इस चित्रकारी के अन्तगर्त शंख, लताएँ, पुष्प, स्वास्तिक, देवी के पद्म चिन्ह, सरस्वती की चौकी आदि अनेक ज्यामितीय आकृतियाँ अंकित की जाती है। ऐपण कला में विशेष रूप से पंचशिखा अथवा पंचानन स्वास्तिक के ज्यामितीय आकारों का निर्माण किया जाता है इसमें पाँच कोण होते है, यह चिन्ह संसार की संरचना का सूचक हैं। इस प्रकार सरस्वती चौकी ऐपण कला के पाँच कोण का प्रतीक है–पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि। इसके अलावा इस लोककला में वृत्त, पंचकोण, षटकोण आदि अनेक ज्यामितीय आकारों का प्रयोग किया जाता है।

4. अल्पना कला

अल्पना कला (बंगाल)

'अल्पना' बंगाल की प्राचीन लोककला शैली है, इसे मंगल सूचक माना जाता है और विशेष समारोह, त्योहारों तथा शुभ उत्सवों पर बनाया जाता है। इस प्रकार बंगाल में अनेक परिवारों में अल्पना लगभग प्रतिदिन बनती है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि यह खुशियों और उन्नति का प्रतीक है तथा इस कला का लोक जीवन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस लोककला में घर की भूमि (फर्श) और दीवारों पर सेलखड़ी, खड़िया, पिसे हुए चावल का घोल, चावल का सूखा पाउडर आदि के माध्यम से सफेद रेखाकंन किया जाता है। कलाकार लाल रंग के लिए सिंदूर पेस्ट और पीले रंग के लिए हल्दी पेस्ट से आकृतियों का रूपाकंन करते हैं तथा इसमें फूल, पत्तियों से बने सूखे रंग, लकड़ी का कोयला आदि का भी प्रयोग करते हैं. इस लोककला में कलात्मक ज्यामितीय प्रतीकों का विशेष महत्त्व है जैसे–वृत्त, वर्ग, त्रिभुज, चतुर्थकोण, षटकोण,

अष्टकोण आदि का अंकन किया जाता है इसके अलावा इन आकृतियों में सूर्य, कमल, स्वास्तिक, लक्ष्मी जी के पैरों के निशान, साँप, शंख, हल, उल्लू, सीढ़ी, मछली, पान के पत्ते और चावल का तना आदि को चित्रित किया जाता है।

5. माँडणा कला

'माँडणा' राजस्थान की महत्त्वपूर्ण लोककला है इसका अपना निश्चित रूप है जो उन्हें स्थान विशेष की परम्पराओं, रीति–रिवाजों और रहन सहन से मिला है। इस लोककला में महिलाएँ अपनी परम्पराओं स्वरूप घर, आँगन सभी स्थानों पर माँडणा निर्मित करती है। माँडणा में मुख्य रूप से गेरू तथा खड़िया आदि रंगों के साथ पुष्पों का भी प्रयोग किया जाता है, इस कला को सभी शुभ अवसरों जैसे– होली, दीपावली, रक्षाबन्धन, उत्सव, त्यौहार आदि पर किया जाता है। माँडणा लोक कला में विशेष रूप से ज्यामितीय प्रतीकों का महत्व है जैसे–चतुर्भुज समृद्धि का प्रतीक है जबकि त्रिभुज, वृत्त और स्वास्तिक आदि प्रतीक भी मंगल कार्यो के लिए सभी उत्सवों में निर्मित होते हैं। इनमें से कुछ आकृतियाँ हड़प्पा काल की सभ्यता से मिलती जुलती है। माँडणा की पारम्पारिक आकृतियों में ज्यामितीय व पुष्पों की आकृतियों को शामिल किया जाता है। इस प्रकार माँडणा की पुष्प आकृतियाँ सामाजिक व धार्मिक विश्वास से सम्बन्धित हैं जबकि ज्यामितीय आकृतियाँ तंत्र, मंत्र और तांत्रिक प्रभावों को दर्शाती है। इस प्रकार माँडणा लोककला में ज्यामितीय प्रतीक अपनी विशिष्टता और परम्परा को बनाए हुए हैं।

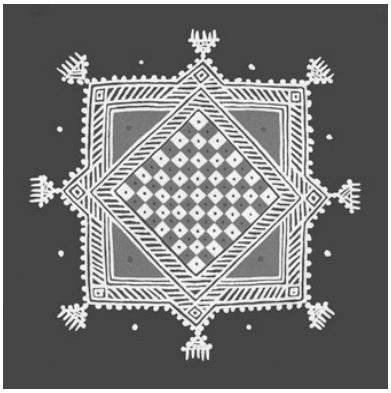

माँडणा (राजस्थान)

6. चौक पूरना कला

'चौक पूरना' लोककला भारतीय संस्कृति में एक मांगलिक कार्य के रूप में जानी जाती हैं। यह उत्तरप्रदेश के हिन्दू परिवारों के सभी शुभ कार्यों में पूजा का विधान है और इसमें पूजा स्थल पर बनाई जाने वाली वेदी में सुखे आटे, चावल, हल्दी, रोली, गेरू, चूना तथा सूखे प्राकृतिक रंगों के प्रयोग से भू–पृष्ठ पर अनेक ज्यामितीय प्रतीकों का अंकन किया जाता है। ज्यमितीय प्रतीकों में मुख्य रूप से त्रिकोण, चतुर्थकोण, पंचकोण, षटकोण, वर्ग, वृत्त आदि बनाये जाते है इसके अलावा अन्य आकृतियों में पेड़, पक्षी, स्वास्तिक, मानव आकृतियाँ, नौ खण्डीय कमल आकार आदि भी अंकित होते हैं। इस प्रकार इन बाह्य आकारों के साथ–साथ विभिन्न मांगलिक चिन्ह बनाये जाते हैं। चौक पूरना ज्यामितीय प्रतीकात्मक रूप में बनाया जाता है परन्तु इनके अलंकरण में आलेखन से युक्त

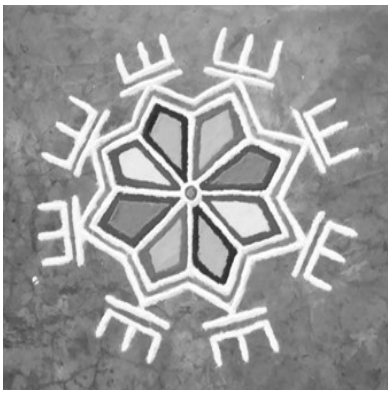

चौक पूरना (उत्तर प्रदेश)

लयात्मक रेखाओं का भी प्रयोग किया जाता है। इस कला के मंगलमयी वातावरण को तैयार करने के लिए विशेष रूप से भूमि एवं भित्ती को आवश्यक तत्त्व माना जाता है। इस लोककला में बनाए गए प्रत्येक ज्यामितीय प्रतीकों का अपना महत्त्व, मौलिकता तथा विशिष्टता होती है।

7. मधुबनी कला

मुधबनी (बिहार)

'मधुबनी' लोककला बिहार के मिथिला क्षेत्र की सर्वाधिक प्रसिद्ध कला है इसे मिथिला कला के नाम से भी जाना जाता है इसके अलावा मधुबनी, जितवारपुर, दरभंगा, पूर्णिया, रान्ती आदि क्षेत्रों में भी इस कला का अंकन मुख्य रूप से किया जाता है, ऐसी मान्यता है कि मिथिला लोककला का प्रारम्भ वैदिक काल से हुआ था। राजा जनक ने अपनी पुत्री सीता के विवाह के मांगलिक अवसर पर अनेक स्वास्तिक और कोहबर के लोक चित्र अंकित करवाए। मधुबनी कला शुरू से ही विभिन्न संप्रदायों द्वारा प्रचलित हुई थी इसलिए इन चित्रों को पाँच शैली में विभक्त किया गया है जैसे तांत्रिक, कोहबर, भरनी, गोड़ना, कचनी है। इस शैली के मुख्य विषयों में प्राकृतिक दृश्यों के साथ–साथ प्राचीन महाकाव्यों, देवी–देवताओं जैसे कृष्ण, राम, शिव, गणेश, दुर्गा, महाकाली सरस्वती आदि भी है। इसके साथ ही सूर्य और चन्द्रमा जैसे– आकाशीय पिन्ड आकृतियाँ भी मधुबनी चित्रों का केन्द्र बिन्दु है तथा खाली स्थान की पूर्ति के लिए रेखाओं को समान्तर रूप से सीधी, खड़ी, क्षैतिज, कर्णवत, घुमावदार, वक्राकार आदि से फूलो पत्तियों सहित अनेक ज्यामितीय प्रतीकों का अंकन किया जाता है जैसे वृत्त त्रिभुज, वर्ग, अष्टदल कमल आदि। इस प्रकार मधुबनी लोककला की मुख्य विशेषता है कि इसकी प्रत्येक आकृतियाँ दोहरी सीमान्त रेखाओं में अंकित की जाती है। प्राचीन समय में इन लोक चित्रों को निर्मित करने के लिए भित्ती और फर्श पर प्राकृतिक स्रोतों का प्रयोग किया जाता था जैसे चावल, हल्दी, खड़िया, गेरु, फूल, पत्तियों का रस आदि। वर्तमान समय में कलाकारों ने मधुबनी लोक चित्रकला में भी परिवर्तन किया है इन्होंने नये विषयों के साथ–साथ नये माध्यमों का भी उपयोग किया है जैसे कागज, कैनवास, जलरंग, एक्रेलिक आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मधुबनी लोक चित्रकला की संस्कृति और सौन्दर्य ने उसकी ज्यामितीय रेखाओं, प्रतीकों, संयोजन, रंग व विषय आदि को एक नवीन आयाम दिया है।

8. गोंड कला

'गोंड' मध्य प्रदेश की एक प्रमुख जनजाति कला है यह जनजाति भारत के सबसे बड़े आदिवासी समुदायों में से एक है तथा यह कला गोंड जनजाति की प्रधान जनजाति के कलाकारों द्वारा विशेष रूप से भी चित्रित की जाती है। गोंड जनजाति के समाज में जितना महत्त्व धर्म और संस्कृति का है उनके जीवन में कला का भी उतना ही महत्त्व है क्योंकि कला उनकी संस्कृति और धर्म का ही अभिन्न अंग है। जे. स्वामीनाथन ने जनगढ़ सिंह श्याम को भारत का प्रथम गोंड जनजाति का कलाकार माना। जनगढ़ सिंह श्याम इस कला को कागज और कैनवास पर उतारने वाले प्रथम व्यक्ति थे उन्होंने वास्तव में पारम्पारिक कला को पुनजीर्वित किया तथा संसार

में एक नई पहचान दिलाई। प्राचीन काल में गोंड कला घरों की भूमि और दीवारों को सजाने के लिए फूलों, चारकोल, गाय का गोबर, गेरू, खड़िया आदि का प्रयोग करते थे। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रकृति और जंगल के साथ अपनी निकटता का चित्रण करते थे। धीरे–धीरे समय के परिवर्तन के साथ कलाकारों ने एक्रेलिक और जलरंगों के माध्यम से इन आकृतियों को कागज और कैनवास पर बनाना शुरू किया। इस शैली के प्रमुख विषयों में हिरन, हाथी, बाघ, सॉप, पेड़ तथा विभिन्न पक्षी आदि थे। कलाकार ने इन विषयों को भरने के लिए महीन तथा घुमावदार रेखाएँ, पानी की बूँदे, बिन्दुओं, डेश, बीज का आकार, मछली के शेल्फ आदि अनेक ज्यामितीय प्रतीकों का उपयोग किया है। वर्तमान में यह कला अपनी विशिष्ट सौन्दर्य, पवित्रता और परम्पराओं को बनाए हुए हैं।

गोंड (मध्य प्रदेश)

निष्कर्ष

लोक एवं जनजातीय कलाओं में सौन्दर्य व अलौकिक भावों की अभिव्यक्ति होती है तथा इन कलाओं का आधार ही ज्यामितीय स्वरूप है जिनमें प्रयुक्त ज्यामितीय प्रतीकों जैसे लाइन, त्रिभुज, वृत्त, वर्ग, आयात, पंचकोण, षटकोण आदि सौन्दर्य बोध के साथ–साथ अपने में विशिष्ट अर्थ समाए हुए हैं इसके साथ ही स्वास्तिक, अष्टदल कमल, कलश, चक्र आदि अनेक धार्मिक चिन्हों का भी प्रयोग किया जाता है। इन कलाओं कि ऐतिहासिक और सांस्कृतिक झलक उनके द्वारा निर्मित विभिन्न प्रकार की ज्यामितीय आकृतियों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। लोक व जनजातीय कलाएँ भिन्न–भिन्न स्थान पर अलग–अलग नाम से जानी जाती है जो उस विशेष स्थान की सभ्यता, संस्कृति और परम्परा के बारे में दर्शाती है स्थानीय तथा भौगोलिक वातावरण से भी यह कलाएँ प्रभावित होती है। यह कलाएँ केवल संस्कृति, परम्पराओं, जादू–टोनें व तांत्रिक प्रभाव आदि तक ही सीमित नहीं है बल्कि वर्तमान में महिलाओं, पुरुषों, कलाकारो में व्यापार का नवीन साधन भी है। इन चित्रों में ज्यामितीय आकृतियाँ, सरलीकरण एवं दृश्यात्मक रूप दिखायी देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि यह कलाएँ मुख्य रूप से उपयोगितावादी, सजावटी और पारम्परिक है तथा यह कलाएँ परम्परा और आधुनिकता के संगम स्वरूप ज्यामितीय प्रतीकों द्वारा कला इतिहास में अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। यह विशिष्ट शैलियाँ सभी कलात्मक गुणों, सांस्कृतिक व परम्पराओं से परिपूर्ण है तथा यह आगामी पीढ़ी के लिए अपनी बहुआयामी कला का अनुसरण करके उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर होगीं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. उज्ज्वल, आलोक. (2016). मधुबनी चित्रकला : लोक संस्कृति की कलात्मक अभिव्यक्ति. *शब्द ब्रह्मा भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका.* अंक 4. भाग 9. पृष्ठ **54–58.**
2. गुप्ता, ह्रदय. (2018). चौक पूरना. हिन्दी संस्थानः लखनऊ, उत्तर प्रदेश।
3. गुप्ता, नलिमा. (2012). भारतीय लोककला. स्वाति पब्लिकेशनः दिल्ली प्रथम संस्करण।

4. प्रताप, रीता. (1996). लोक माँडणे राजस्थान के जनजातीय एवं लोककला विशेषांक. प्रकाशक समंदर सिंह खंगारोत 'सागर' आकृतिः राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर।
5. भावसार, बीरबाला. (2012). सौन्दर्य दर्शन. प्रथम संस्करण, जयपुर।
6. यादव, नीलू. (2019). मध्यप्रदेश की गोंड जनजातीयों की ऐतिहासिक एवं संस्कृति का अध्ययन. श्रृंखला एक शोध परक वैचारिक पत्रिका. अंक 6. भाग 2. .पृष्ठ **116–119.**
7. साखलकर, र.वि. (1990). लोककला की अर्थवत्ता लोककला विशेषांक. विपन बिहारी सक्सेना, आकृतिः राजस्थान लालित कला अकादमी, जयपुर।
8. सिंह, चरणजीत. (2019). मधुबनी लोक चित्रकला पर समकालीन प्रभाव. इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च ग्रंथालय. अंक 7.
9. सिंह, ममता. (2015). दृश्य कला और लोककला के मूल तत्त्व एवं सिद्वान्त. राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी–द्वितीयः जयपुर।
10. Living Traditions Tribal and folk Paintings of India Book Publised by (2017). Director centre for cultural Resource and Training. Ministry of Culture Government of India: New Delhi.